New Man International Journal of Multidisciplinary Studies
(UGC Approved Journal No. 45886)
ISSN: 2348-1390
Impact Factor: 4.321 (IIJIF)

24.

जाति आधारित श्रम और मानव अधिकार उल्लंघन: धोबी जाति के परिप्रेक्ष्य में

नरेन्द्र कुमार दिवाकर
पी-एच.डी. (समाज कार्य)
शोधार्थी, म.गां.अं.हिं.विवि., वर्धा
ई-मेल: nkdiwakar0703@gmail.com

देश में सभी नागरिकों के लिए कानून व्यवस्था और जीवन के अधिकारों का प्रतिपादन भारतीय संविधान के अनु.21 और संयुक्त राष्ट्र के समझौते जैसे अनु. 5 (बी), सभी प्रकार के जातिगत भेदभाव के अंत के लिए समझौता, 1965 एवं अनु. 6 राजनीतिक व नागरिक अधिकारों पर अंतर्राष्ट्रीय अनुबंध, 1966 के अंतर्गत किया गया है। भारतीय संविधान में अनु. 15 के तहत जाति आदि के आधार पर विभेद का प्रतिषेध तथा अनु. 17 के अंतर्गत अस्पृश्यता का अंत और अस्पृश्यता अपराध अधिनियम1955,अनुसूचित जाति तथा जनजाति (उत्पीड़न सुरक्षा)अधिनियम 1989,आदि के तहत भी जातिगत भेदभाव को रोकने का प्रावधान है बावजूद इसके आज भी जातिगत भेदभाव सबसे बड़े अवरोध के रूप में उपस्थित है, जिससे वंचित तबकों की न्याय तक पहुँच और अत्याचारों से उनकी सुरक्षा नहीं हो पा रही है। उना(गुजरात)और शब्बीरपुर या सहारनपुर (उत्तर प्रदेश) की घटनाएँ इसका उदाहरण हैं, 2018 में भी इस तरह की घटनाएं तेजी से सामने आ रही हैं। ह्यूमन राइट्स वाच ने भारत के संबंध में अपनी World Report 2015 में कहा है कि 'जातिगत भेदभाव और आदिवासी समुदायों की अनदेखी भारत में वैसी ही एक सतत समस्या है जैसे कि यौन दुर्व्यवहार और महिलाओं, बच्चों के साथ अन्य हिंसा। दलित (तथाकथित अछूत) और आदिवासी समूहों के साथ भेदभाव और हिंसा जारी रही। दलित समुदाय को न्याय प्राप्त करने में जो दिक्कतें आती हैं वो वर्तमान में बिहार के 4 और आंध्रप्रदेश राज्य के एक न्यायालय के निर्णय द्वारा प्रकाश में आई थीं।'[1]

जाति एक सामाजिक-सांस्कृतिक संरचना है इसकी पहचान क्षेत्र, कर्मकांडीय दर्जे, पारंपरिक पेशे और सजातीय विवाह की मिली-जुली जटिल संरचना के आधार पर बनती है। यह कहा जाता है कि जाती प्रथा की जड़ें भारत में बहुत गहरी हैं, कोई भी ऐसा क्षेत्र नहीं है जहां जाती के नाम पर उत्पीड़न न होता हो। धीरूभाई सेठ के अनुसार जाति की समस्या का अंतर्राष्ट्रीयकरण किया जाना चाहिए। जातिगत भेदभाव केवल भारतीय समाज की परिघटना ही नहीं है। मात्रा और रूप भले ही भिन्न हों लेकिन यह भेदभाव दक्षिण एशिया और पूर्वी एशिया के कई देशों में प्रचलित है। यहां तक कि वहाँ छुआछूत जैसी प्रथा भी मिलती है। छुआछूत मानवता के खिलाफ अपराध है और मानव होने के अधिकार का सवाल है इसलिए छुआछूत की विचारधारा और प्रथा का विरोध सभी मंचों पर उठाना जरूरी हो जाता है।[2]

विदेशों में भी जातिगत भेदभाव मौजूद हैं। ब्रिटेन में भी लाखों लोग भेदभाव का सामना कर रहे हैं। तभी तो 2013 में ब्रितानी संसद के ऊपरी सदन 'हाउस ऑफ लॉर्ड्स' के सदस्यों ने जाति की बुनियाद पर भेदभाव को खत्म करने की मांग उठाईथी। पूर्व कंजर्वेटिव मंत्री लॉर्ड डेबेन ने भी उस वक्त कहा था कि, "आप नाम बदल कर उन्हें अछूत से दलित कह सकते

[1]https://www.hrw.org/hi/world-report/2015/country-chapters/268015 30/06/2017 को देखा गया

[2]सत्ता और समाज, धीरूभाई सेठ, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009

हैं, लेकिन आप इस तथ्य को नहीं बदल सकते हैं कि लोगों को खास समुदाय में पैदा होने के कारण बहुत सी मुश्किलों का सामना करना पड़ता है."[3]सरकार ने भी इस बात को स्वीकार करते कहा कि हम भेदभाव को ख़त्म करना चाहते हैं।

ऐसा नहीं है कि सिर्फ प्रशासन ही मानवाधिकारों का उल्लंघन करता है। कई बार सरकार स्वयं इस उल्लंघन को बढ़ावा देती है। ऐसा ही उल्लंघन बिहार में नीतिश सरकार द्वारा सितंबर 2007 में किया गया। नीतिश सरकार ने महादलित आयोग के गठन कर 22 दलित उपजातियों में से 18 को महादलित वर्ग के अंतर्गत वर्गीकृत किया। जिन चार उपजातियों को महादलित का दर्जा न मिला वे थीं- दुसाध या पासवान, रविदास (चमार), धोबी (कपड़ा धोने वाला आदमी) एवं पासी (तारी बेचने वाला)। तब राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग ने सरकार द्वारा गठित महादलित आयोग की आलोचना की और इसे असंवैधानिक करार दिया। राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग ने राज्य सरकार के इस एकतरफा फैसले के विरोध स्वरूप बूटा सिंह की अध्यक्षता में एक बैठक बुलायी। इस बैठक में सामाजिक न्याय मंत्रालय, जन प्रशिक्षण विभाग तथा गृह मंत्रालय के अधिकारीगण भी शामिल हुए थे। राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग ने इस बात की शिकायत की कि बिहार राज्य में अनुसूचित जाति के राज्य आयोग का गठन नहीं हुआ है, यदि राज्य सरकार दलित समुदाय की भलाई के लिए काम करना चाहती है तो सर्वप्रथम इस तरह का आयोग गठित करे।[4]

डॉ. मोहन लाल गुप्ता ने अपनी पुस्तक 'राजशाही का अंत'[5] में बीकानेर के संदर्भ में बात करते हुए लिखा है कि "बेगार के अभिशाप से तो राजधानी का नाई, धोबी आदि निम्नवर्गीय तबका भी काँपता और छुपता फिरता था, क्योंकि वह मुखर नहीं हो सकता था और मूक रहने को मजबूर था।... उनके साँस से घास जलती थी। उस समय पीड़ित मानवता का सहायक बनने कि हिम्मत कौन कर सकता था?" ठीक इसी तरह का वाकया पिछले मार्च-अप्रैल माह में देश की राजधानी दिल्ली में हुआ जब वसंतकुंज अपार्टमेंट के डी ब्लॉक के धोबियों को कपड़ों पर प्रेस करने की कीमत बढ़ाने पर अपार्टमेंट की रेजीडेंस वेल्फेयर एसोसिएशन ने उनको अपार्टमेंट से बाहर खदेड़ दिया और उनका समान भी बाहर फेंक दिया था। पुलिस में भी उनकी बात नहीं सुनी गई अंततः लगभग 3 महीने बाद उन्हें आपस में समझौता करना पड़ा। तब जाकर उन धोबियों को पुनः अपार्टमेंट में घुसने और काम करने का मौका मिला। लेकिन प्रेस करने की दर पहले से कम हो गई। अब कोई एक कपड़े का 3 रूपए देता है तो कोई 4 और कोई 5 रूपए। इससे सहज ही यह अंदाजा लगाया जा सकता है कि आजादी के 70 साल बाद हम इतनी प्रगति कर चुके कि जहां हम एक तरफ चाँद पर जाने की बात करते हैं तो वहीं दूसरी तरफ श्रम करने वाली जातियों को न तो उनके श्रम का उचित मूल्य दिया जाता है और न ही सम्मान।

छत्तीसगढ़ के सतनाम पंथ में आज भी धोबियों का प्रवेश वर्जित है। पुरषोत्तम अग्रवाल जीअपनी पुस्तक *'तीसरा रूख'* में लिखते हैं कि अपने परवर्ती रूप में यह पंथ आत्मसजग रूप से 'रैदास के वंशजों' तक सीमित किए बैठा है। अन्य पंथों में ऐसी घोषित जातिपरक आत्मसजगता शायद नहीं है, लेकिन व्यवहारतः निर्गुणपंथी संतों के नाम पर चले पंथों के जातिपरक आधारों को अलग-अलग पहचानना मुश्किल नहीं है।[6]

जाति प्रथा अपने आप में समाज का एक बड़ा संस्थान है और मानवाधिकारों के उल्लंघन का बहुत बड़ा स्रोत है। इसी से ही पता चलता है कि जाति आधारित श्रम भी मानवाधिकारों की उल्लंघन कि श्रेणी में आता है। वंचित तबकों को जातिप्रथा और जाति आधारित श्रम करने के कारण अस्पृश्यता की दोहरी मार झेलनी पड़ती है। आज देश में एक भी जाति

[3]http://www.bbc.com/hindi/international/2013/03/130306_britain_uk_aa 30/60/2017 को देखा गया

[4]https://sol.du.ac.in/mod/book/view.php?id=1475&chapterid=1395

[5]सुभदा प्रकाशन

[6]तीसरा रुख, पुरषोत्तम अग्रवाल,वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1996

ऐसी नहीं है जो जातिवादी चेतना से ग्रसित न हो औरकोई भी ऐसी जाति नहीं है जिसका अपना एक या एक से अधिक जाति संगठन मौजूद न हो। जाति प्रथा सामाजिक आर्थिक संरचना का हिस्सा होने के साथ-साथ उससे पैदा होने वाली एक ऐसी वैचारिक चेतना बन गई है जो हजारों वर्षों से लोगों को मिलती रही है और इस तरह वह अपने आप में एक मजबूत शक्ति के रुप में स्थापित हो गयी है।

जाति प्रथा के संदर्भ में संयुक्त राष्ट्र के मानवाधिकार विशेषज्ञों ने 2013 में जाति के आधार पर हो रहे भेदभाव को स्वीकार करते हुए कहा कि दक्षिण एशियाई देशों में क़रीब 26 करोड़ लोग जाति प्रथा के शिकार होकर अपना जीवन बहुत दयनीय हालात में जीते हैं और उनके साथ हर क्षेत्र में भेदभाव होता है।[7] जाति के आधार पर या जाति आधारित श्रम के आधार पर भेदभाव मानवाधिकारों का ही उल्लंघन है। मानवाधिकार शब्द बहुत ही व्यापक है इसके होने मात्र से ही इंसान को किसी भी समाज में जीने का अधिकार मिलता है अर्थात मानवाधिकार मनुष्य के वे मूलभूत सार्वभौमिक अधिकार हैं, जिनसे मनुष्य को नस्ल, जाति, राष्ट्रीयता, धर्म, लिंग आदि किसी भी दूसरे कारक के आधार पर वंचित नहीं किया जा सकता।

राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग के निर्देश पर उड़ीसा (अब ओडिशा) के पंचायतीराज विभाग ने *बर्तन प्रणाली प्रथा* पर प्रतिबंध लगा दिया। इस प्रथा को समाप्त करने की अधिसूचना 9 मार्च 2011 को जारी की गई थी। इस प्रथा के तहत अगड़ी जातियों के लोग केवल 15 किग्रा धान देकर नाई और धोबी का काम करने वाली पिछड़ी जातियों के व्यक्तियोंसे पूरे वर्ष भर विशेषकर शादी-व्याह के अवसरों पर बेगार करवाते हैं। इतना ही नहीं अगड़ी जाति के लोग नाई और धोबी का काम करने वाले लोगों से अपने पैर भी धुलवाते हैं। इसकी शिकायत दिसंबर 2008 में राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग में की गई थी।

आज भी दलित जातियों में भी वर्ण व्यवस्था की ऊंच-नीच की भावना और शौच-अशौच तथा अन्य जाति सम्बन्धी आस्थाओं की इतनी जबर्दस्त पकड़ है किवे भले ही समाज में अपनी नीची प्रस्थति के बारे में शिकायत करते फिरते हों परन्तु जब कभी किसी दूसरी दलित जाति या उससे अपने संबंध का मामला आता है तब वह उसी जाति व्यवस्था के अनुसार अपने संबंधों का निर्धारण करते हैं। आज भी उत्तर भारत के अनेक स्थानों पर कई अस्पृश्य जातियां भीधोबी जाति को अस्पृश्य मानती हैं और आनुष्ठानिक तौर पर धोबी के सम्पर्क में आना वर्जनीय।

यह समझ से परे है कि धोबियों, बुनकरों, लोहारों, कुम्हारों, बढ़इयों, बांसफोरों, मोचियों की दस्तकारी-शिल्पकारी और मनोरंजन करके दूसरों को खुश करके अपनी आजीविका चलाने वाले वाले नटों की कलाकारीआदि को सम्मान की नज़रों से क्यों नहीं देखा जाता?जबकि छोटे और तुच्छ समझे जाने वाले इन लोगों के काम में गजब की गंभीरता और समर्पण होता है। लेकिन समाज में उनकी दक्षता का उचित सम्मान नहीं किया जाता।

जाति को अमेरिका में भी इतना खतरनाक माना गया कि 1996 में टेक्सास को यह कथन करने के लिए अपनी दंड प्रक्रिया संहिता का संशोधन करना पड़ा कि मृत्युदंड संबंधी मामलों में अभियोजन 'यह स्थापित करने के लिए कि प्रतिवादी का कुल या जाति इसकी संभावना बनाते हैं कि प्रतिवादी भावी आपराधिक आचरण में लिप्त होगा', साक्ष्य प्रस्तुत न करे। अर्थात्, 1996 में पश्चातवर्ती, टेक्सस में विधि को यह उपधारणा करने की प्रवृत्ति का स्पष्ट रूप से प्रतिषेध करना पड़ा कि कुछ व्यक्तियों में अपने कुल या जाति के कारण अपराध के प्रति अंतर्निहित, आनुवंशिक पूर्वानुकूलता होती है । अमरीकन विधिज्ञ परिषद् ने भी यह आग्रह किया है कि विधि 'भावी खतरे' की धारणा को ही समाप्त कर दे।क्योंकि उनका यह मानना है कि यह विचार 'बहुधा अविश्वसनीय, वैज्ञानिक साक्ष्य की ओर मुड़ जाता है। अमरीकन विधिज्ञ परिषद् ने यह भी माना कि अंतर्निहित रूप में आपराधिक झुकाव जैसी वस्तु का कोई वैज्ञानिक साक्ष्य नहीं है।[8]भारत के संदर्भ में आपराधिक जनजाति

[7] http://www.unmultimedia.org/radio/hindi/archives/751/

[8] मृत्युदंड पर भारत के विधि आयोगकी रिपोर्ट अगस्त 2015

अधिनियम, 1871 का उदाहरण ले सकते हैं, हालांकि 1952 में इस अधिनियम को निरसित तो कर दिया गया था, परंतु आज भी उसकी अवधारणा को समाज और प्रशासन बखूबी मान्यता देता है।

समस्या यह है कि लोग मानवाधिकारों की व्याख्या अपने-अपने ढंग से करते हैं। कई देशों में इसे लोगों के धार्मिक अधिकारों से जोड़कर अधिक देखा जाता है तो कहीं-कहीं व्यक्तियों के अधिकार धार्मिक कानूनों की आड़ में कुचल दिए जाते हैं। जनसंख्या बहुल देशों विशेष तौर से भारत में पुलिस तंत्र समाज के दबे-कुचलों पर अधिक कहर बरसाता है।

2010 में उड़ीसा के गंजाम जिले के धुरुबुरई गांव में उच्च जातियों ने धोबी समुदाय के परिवारों पर डेढ़ लाख रुपए का जुर्माना लगाया है। उनका दोष महज इतना है कि उन्होंने साल भर तक कपड़े धोने के लिए प्रति व्यक्ति 50 रुपए की मांग की थी। इससे पहले इस काम के उन्हें केवल 20 रुपए ही मिलते थे। इन दलितों को केवल जुर्माना लगाकर ही नहीं छोड़ा गया। इन्हें इस साल अपनी फसल काटने नहीं दी गई और बार-बार इन पर हमले किए जाते रहे। तथाकथित उच्च जातियों का तथाकथित निम्न जातियों पर अत्याचार का यह अकेला मामला नहीं है।[9]

सवर्ण या तथाकथित उच्च जातियों द्वारा वंचित तबकों पर अत्याचार या शोषण स्वतंत्रता के बाद भी किया जाता रहा है। बल्कि दलित कहे जाने वाली जातियों द्वारा भी दलितों का शोषण किया जा रहा है। यह भेदभाव तब और भी भयानक हो जाता है जब सत्ता में बैठे लोग, राजनेता, विधायक या सांसद जैसे लोग, जिनके भरोसे पर जनता इस तरह के भेदभाव करने में सहायता करने की उम्मीद लगाए बैठी है, भी आम जन के मानवाधिकारों का हनन करने लगते हैं। पहला मामला बिहर से है। बिहार में पिछड़ी जाती से आने वाले एक विधायक (राष्ट्रीय जनता दल, बिहार) द्वारा अपने दलित (धोबी) वर्ग के ड्राइवर के साथ मूत्र पीने जैसा अमानवीय कार्य किया गया।[10]दूसरा मामला उत्तर प्रदेश के गाजियाबाद का है। जहां 3 फरवरी, 2017 को जिलाध्यक्ष, जो उच्च जाति के थे,ने गाजियाबाद में ही एक बैठक के दौरान कांग्रेस की अनुसूचित जाति सेल के अध्यक्ष से कहा, 'तुम इस मीटिंग में कैसे आए? तुम्हारी बैठक तीन बजे से थी। यह बड़े लोगों की बैठक है। तुम जैसे छोटे लोगों की इस बैठक में कोई जगह नहीं है। धोबी जाति के लोग अगर हमारे साथ बैठेंगे, तो हमारी क्या इज्जत रह जाएगी? तुम्हारी जरूरत यहां नहीं, बल्कि हमारे पैरों के नीचे है।' इस मामले की शिकायत पीड़ित ने पार्टी के राष्ट्रीय अध्यक्ष से की थी। उत्तर प्रदेश कांग्रेस महासचिव ने भी मामले की पुष्टि करते हुए कहा था कि उस वक्त जिलाध्यक्ष ने यह कहा था कि 'यह मीटिंग उंची जाति वालों के लिए है।'[11]

आज भी धोबी जाति के लोगों के साथ सिर्फ इसलिए भेदभाव किया जाता है कि वे धोबी जाति से ताल्लुक रखते हैं और धोबी जाति का पेशा कपड़े धोना रहा है/है, चाहे उनके पूर्वजों ने जातिगत पेशे को कभी किया भी न हो तब भी। आजादी के 70 वर्ष के पूरे होने के बाद राजनीतिक रूप से सशक्त होने के बावजूद भी कई बार जातिगत भेदभाव या जाति आधारित श्रम करने पर भेदभाव का सामना करना पड़ता है।

26 मार्च, 1991 को तत्कालीन श्रम व कल्याण राज्यमंत्री रामजी लाल सुमन ने मुख्यमंत्रियों को सूचना दी कि शासकीय घोषणाओं और पत्राचार आदि में 'हरिजन' और 'गिरिजन' शब्दों के प्रयोग पर रोक लगा दी गई है। यह रोक 16 अगस्त, 1990 से ही प्रभावी हो गई थी[12] और तब से लगभग कई राज्यों ने 'हरिजन' शब्द के इस्तेमाल पर पाबंदी लगा दी है

[9]http://drambedkarji.blogspot.in/2010/04/21.html 25/06/2017 को देखा गया

[10]यूजीसी नेट/जेआरएफ/सेट राजनीति विज्ञान(तृतीय प्रश्न-पत्र), डॉ. अशोक कुमार, उपकार प्रकाशन, आगरा, 2016, पृ.375ए

[11]http://www.thehindu.com/news/national/your-place-is-under-our-feet-up-congress-leader-tells-sc-cell-chief/article8199304.ece 25/06/2017 को देखा गया द हिंदु 5 फरवरी, 2017

[12]संस्कृति: वर्चस्व और प्रतिरोध, पुरुषोत्तम अग्रवाल, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण 2008, पृ.98

परंतु इसका इस्तेमाल आज भी हो रहा है। संवैधानिक शब्दावली में हरिजन शब्द उचित नहीं बताया गया। इसलिए इस शब्द का इस्तेमाल जाति विशेष के लिए न किया जाए। ऐसी जातियों के लिए संविधान में अनुसूचित जाति प्रयुक्त हुआ है तथा अनुसूचित जातियों से संबंधित कुछ संस्थाओं द्वारा भी हरिजन शब्द पर आपत्ति की जा रही है। 24 मार्च,2017 को भी उच्चतम न्यायालय ने एक मामले में अपना निर्णय सुनाते हुए कहा कि 'हरिजन या धोबी शब्द का प्रयोग उचित नहीं।'जस्टिस आरके अग्रवाल और जस्टिस अशोक भूषण की बेंच ने अनुसूचित जाति की महिला को 'हरिजन' और 'धोबी' कहकर अपमानित करने के मामले में फैसला सुनाते हुए टिप्पणी की। मामले में ओमकारजीत सिंह अहलूवालिया और दो अन्य को दी गई अग्रिम जमानत कोर्ट ने रद्द कर दी।

मामले की सुनवाई करते हुए सुप्रीम कोर्ट कहा कि "भारतीय समाज में कथित ऊंची जातियों के लोग 'हरिजन' और 'धोबी' जैसी जातियों के लोगों को गाली देकर, उपहास कर उनका मजाक उड़ाते रहते हैं। सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि आजकल किसी को धोबी और हरिजन कहना उसे गाली देना है और यह अपमानजनक है। मूलत: इन शब्दों का प्रयोग किसी की जाति का उल्लेख करने के लिए नहीं किया जाता, बल्कि उसका अपमान कर उसे नीचा दिखाना होता है।सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि बतौर देश का नागरिक इस बात को दिल-दिमाग में रखें कि कोई भी व्यक्ति या समुदाय किसी अन्य समुदाय का अपमान न करे, न ही कोई किसी की भावनाओं को ठेस पहुंचाएं।"[13]यह मामला 2009 का है तथा इसका फैसला 2017 में आया है और अभी भी यह मामला बेगूसराय, बिहार की जिला न्यायालय में विचाराधीन (अंडर ट्रायल) है। इससे यह पता चलता है कि आज भी सरकार और न्यायालय दोनों जातिगत भेदभाव और अत्याचार से निपट पाने में अक्षम साबित हो रहे हैं, कारण चाहे जो भी हो।

कई बार आरक्षण को लेकर भी इनका अपमान किया जाता है जबकि उच्चतम न्यायालय के निदेशानुसार पिछड़े वर्गों में उन्नत व्यक्तियों (क्रीमी लेयर) का पता लगाने के लिए और उन्हें पिछड़े वर्गों की सूची से निकालने के लिए एक 3 सदस्यीय विशेषज्ञ समिति न्यायाधीश रामनंदन प्रसाद की अध्यक्षता में गठित की गई थी। समिति ने 10 मार्च 1993 को अपनी रिपोर्ट सरकार को सौंपा था। सरकार ने भी समिति की रिपोर्ट को स्वीकार कर लिया था। इस रिपोर्ट में विशेषज्ञ समिति ने एक सुझाव यह भी दिया था कि 'ग्रामीण कारीगरों अथवा कुम्हार, धोबी, नाई जैसे पुश्तैनी काम में लगे लोगों के मामले में आरक्षण से वंचित रखने का नियम लागू नहीं होगा।'[14]

जातीय आधार पर भेदभाव की जड़ें इतनी गहरी हैं कि जेलों में भी जातीय और धार्मिक आधार पर भेदभाव जैसे झाड़ू लगाने और शौचालय साफ करने का काम सिर्फ दलितों और मुस्लिम कैदियों से कराया जाता है। जेलर और सजायाफ्ता ऊंची जाति के कैदियों के द्वारा छोटे अपराधों में बंद नीची जाति या दलित कैदियों के साथ बुरा बर्ताव किया जाता है।[15]

जाति आधारित श्रम या जातिगत भेदभाव से जहाँ एक ओर व्यक्ति के मानवाधिकारों का हनन होता हैं वहीं दूसरी तरफ सामाजिक विकास की गति भी बहुत धीमी हो जाती है। इस सामन्ती व्यवस्था के अंतर्गत मनमाने तरीके से वंचित तबकों का शोषण किया जाता है जिससे पीढ़ी दर पीढ़ी उनको उभरने का अवसर नहीं मिल पाता। संवैधानिक व्यवस्था और भेदभाव निवारण संबंधी तमाम कानूनों के बावजूद भी आज जातिगत भेदभाव या जाति आधारित श्रम करने वाली जातियों के

[13]https://thewire.in/118852/calling-people-harijan-or-dhobi-is-offensive-supreme-court/ 27/06/2017 को देखा गया।

[14]भारत का संविधान, डॉ. जय नारायण पाण्डेय, सेंट्रल लॉ एजेन्सी, इलाहाबाद, 2008, पृ. 161-62 पर उद्धृत

[15]राम करन निर्मल (विधि शोधछात्र, इलाहाबाद विश्वविद्यालय) की जेल डायरी , सोशलिस्ट फैक्टर, 25-02 जुलाई, 2017, जेल डायरी-लखनऊ , पृ. 9

मानवाधिकार हनन कि घटनाओं में लगातार बढ़ोत्तरी हो रही है। सिर्फ कानून बनाने और संविधान में उपचार प्रदान करने मात्र से ही इस तरह के भेदभाव रुकने वाले नहीं क्योंकि हमारे देश में कानूनी दाँवपेचों में फँसकर रह जाने वाला हमारा न्यायतंत्र भीमानवाधिकार संबंधी मामलों में उचित समय पर न्याय नहीं कर पाता है जिसका परिणाम आम नागरिकों को भुगतना पड़ता है। इसलिए जरूरत है भेदभाव निवारण से संबंधित प्रावधानों को कड़ाई से पालन करने की परंतु यह तभी संभव हो सकता है जब सत्ता और शासन में बैठे लोग निष्पक्ष, द्वेष रहित और पूर्वाग्रह से मुक्त होकर इस संबंध में काम करें।

संदर्भ सूची

1- भारत का संविधान, डॉ. जय नारायण पाण्डेय, सेंट्रल लॉ एजेन्सी, इलाहाबाद, 2008, पृ. 161-62 पर उद्धृत
2- राम करन निर्मल (विधि शोधछात्र, इलाहाबाद विश्वविद्यालय) की जेल डायरी , सोशलिस्ट फैक्टर, 25-02 जुलाई, 2017, जेल डायरी-लखनऊ , पृ. 9
3- संस्कृति: वर्चस्व और प्रतिरोध, पुरुषोत्तम अग्रवाल, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण 2008, पृ.98
4- यूजीसी नेट/जेआरएफ/सेट राजनीति विज्ञान(तृतीय प्रश्न-पत्र), डॉ. अशोक कुमार, उपकार प्रकाशन, आगरा, 2016, पृ.375ए
5- मृत्युदंड पर भारत के विधि आयोगकी रिपोर्ट अगस्त 2015
6- तीसरा रुख, पुरषोत्तम अग्रवाल, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1996
7- सत्ता और समाज, धीरूभाई सेठ, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009
8- http://www.thehindu.com/news/national/your-place-is-under-our-feet-up-congress-leader-tells-sc-cellchief/article8199304.ece 25/06/2017 को देखा गया द हिंदु 5 फरवरी, 2017
9- https://thewire.in/118852/calling-people-harijan-or-dhobi-is-offensive-supreme-court/ 27/06/2017 को देखा गया।
10- http://drambedkarji.blogspot.in/2010/04/21.html 25/06/2017 को देखा गया
11- http://www.bbc.com/hindi/international/2013/03/130306_britain_uk_aa 30/60/2017 को देखा गया
12- https://sol.du.ac.in/mod/book/view.php?id=1475&chapterid=1395
13- https://www.hrw.org/hi/world-report/2015/country-chapters/268015 30/06/2017 को देखा गया
14- सुभदा प्रकाशन
15- http://www.unmultimedia.org/radio/hindi/archives/751/

❑❑❑